श्रीमद भगवदगीता एवं महाभारत के शान्तिपर्व में 'विषाद' वर्णन

***डॉ. धर्मसिंह गुर्जर**

सारांश –

महाभारत के भीष्म पर्व में श्रीकृष्णार्जुन संवाद रूप भगवद्गीता और महाभारत का बारहवा शान्तिपर्व यह दोनों ज्ञान की दृष्टि से अत्यंत श्रेष्ठ है। श्रीमद्भगवद्गीता और शान्तिपर्व इन दोनों की शुरूआत विषाद से ही हुई है। विषाद याने ''खिन्नता, उदासी, उत्साहहीनता'' और युद्ध के प्रारम्भ में रणशुर वीर अर्जुन को तथा युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर को इसी तीव्र विषाद ने घेरा था। रणभूमि पर युद्ध हेतु सज्ज हुआ, शत्रुपक्ष के सैन्य का निरीक्षण करने के लिए दोनों सेनाओं के मध्य स्थित अर्जुन कहता है युद्ध में स्वजन, गुरूजन व सृदृद्जन इनको मारने में न ही मुझे कुछ भला प्रतीत होता है न मुझे विजय प्राप्ति की इच्छा है, न राज्य की, और न ही सुख प्राप्ति की इच्छा है। हम एक महापाप करने को उद्यत हो रहे है, जिसमें एक राज्य के सुखभोग के लोभ के कारण हम अपने ही सबन्धियों को मारने को तैयार है। कौरव मेरे द्वारा सामना न करते हुए हाथ में शस्त्र लेकर भी मुझ शस्त्रहीन को मारे तो वह भी मेरे लिये अच्छा है।''

इसी प्रकार का विषाद युद्धोपरान्त युधिष्ठिर में दिखाई देता है। युधिष्ठिर कहता है इस सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त हुई, हैं परन्तु मेरे हृदय में निरन्तर यह महान् दुःख बना रहता है कि मैने लोभवंश अपने बन्धु बान्धवों का महान संहार करा डाला। यह विजय भी मुझे पराजय सी जान पड़ती है। आत्मीय जनों को मारकर स्वयं ही अपनी हत्या करके हम कौनसा धर्म का फल प्राप्त करेंगे? क्षत्रियों के आचार, बल, पुरूषार्थ और अमर्षकोधिक्कार है। जिनके कारण हम ऐसी विपत्ति में पड़ गये। हम लोग तो लोभ और मोह के कारण राज्य लाभ के सुख का अनुभव करने की इच्छा से दम्भ और अभियान का आश्रय लेकर इस दुर्दशा में फंस गये है। जिसका प्रायश्चित से अन्त नही हो सकता, अतः हमें निस्संदेह नरक में ही गिरना पड़ेगा। इस प्रकार अत्यंत शोक करने वाले युधिष्ठिर ने बताया की मै राज्य का स्वीकार नही करूंगा और इन में सन्यासी वृत्ति धारण कर, शरीर को क्षीण करते हुए समय व्यतीत करूंगा।

वास्तविक रूप से श्रीकृष्ण की सहायता से होने वाला यह धर्म के लिये ''धर्मयुद्ध'' है। किन्तु विकारों के अधीन हुए श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर इन दोनों में विषाद उत्पन्न हुआ है। स्वजनासक्ती के कारण ''मै अपने ज्ञातीओं का वध करूंगा या मैने अपने ज्ञातीओं का वध किया'' लोग क्या कहेंगे? और इस पापाचरण से अधोगति' इस प्रकार के असख्य विचारों से कर्म से निवृत्ति की ओर अर्जुन और युधिष्ठिर गये है। स्वजनासक्ती यह दोनों के विषाद का मुल होते हुए भी, कहीं पर सूक्ष्म रूप से संजय के वक्तव्य का प्रभाव अर्जुन और युधिष्ठिर के विचारों में भासित होता है।

इस निबंध में दोनों के विषाद का स्वरूप, उसके कारण और भेद इन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अर्जुन तथा युधिष्ठिर के विषाद के समान हर एक मनुष्य को कभी न कभी विषाद का सामना करना पड़ता है, उस समय हम इन दोनों ग्रन्थों के ज्ञान से इस विषाद को पार कर सकते है।

प्रस्तावना

श्रीमद् भगवद्गीता और महाभारत दोनों में ''विषाद'' वर्णन संप्राप्त है। ये ग्रन्थ अद्वितीय है जन–जन भारतीय

संस्कृति से आप्लावित होना चाहता है तो इन ग्रन्थों से उसे परिचित होना ही होगा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी महत्ती आवश्यकता है।

महाभारत यह ग्रन्थ केवल भारतीय वाड्मय में ही नही अपितु विश्ववाड्मय में अद्वितीय और अतुलनीय ग्रन्थ है। इसके प्रणेता महर्षि कृष्णद्वैपायन है। ''पंचमवेद'' मान्यता प्राप्त ''शतसाहस्रीसंहिता'' नाम से संबोधित इस महाभारत का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक और दार्शनिक दृष्टि से स्थान अक्षुण्ण है। अठारह पर्वो में विभाजित इस महाभारत ग्रन्थ के भीष्म पर्व में श्रीकृष्णार्जुन संवाद रूप भगवद्गीता यह, आकाशरूपी वाड्मय विश्व में सूर्य की भांति अपने तेज से चमकने वाला, नित्यनुतन तथा मानवी जीवन के लिये प्राणवायू ही है। अठारह अध्यायों से युक्त इस भगवद्गीता के केवल सर्व भारतीय भाषाओं में ही नही तथापि संसार की सर्व प्रमुख भाषाओं में अनुवाद, भाष्य एवं तद्विप्श्क स्वतंत्र अनेक ग्रन्थ लिखे गये है। शंकराचार्यजी की टीका यह सर्व प्रमुख और प्राचीन टीका है। रणभूमि पर व्यामोहित हुए अर्जुन को योग्य मार्ग का बोध कराने हेतु भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञान, कर्म, भक्ति का उपदेश किया है। यही ज्ञान, कर्म, भक्ति, का सुंदर समन्वय हमें शान्तिपर्व में भी मिलता है। शान्तिपर्व यह महाभारत का बारहवा और सबसे बड़ा पर्व है। युद्ध के पश्चात अशान्त मन को शान्ति प्रदान करने वाला यह पर्व अपना नाम सार्थक करता है। उत्तम व्यक्तित्व, सामाजिक सुव्यवस्था वैसे ही शान्ति तथा राष्ट्रसमुद्वी सबंधित सर्वागीण विचार इसमें अनुस्यूत है। इस शान्तिपर्व में 365 अध्याय होकर श्लोक संख्या 14,725 है। युद्ध के पश्चात शोकाकुल युधिष्ठिर का अपने बाधावों के साथ शरशस्यापर स्थित भीष्म पितामह की ओर जाना तथा भीष्म के द्वारा राजधर्म आपद्धर्म और मोक्षधर्म का विलक्षण ज्ञान प्रदान करना यह शान्तिपर्व का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय 1. राजधर्मासुशासनपर्व 2. आपद्धर्मपर्व 3. मोक्षधर्मपर्व इन उपपर्वो में विभाजित है।

प्रमुख विषय

श्रीमद्भगवद्गीता और शान्तिपर्व इन दोनों की शुरूआत विषाद से ही हुई है। वि+सद् धातु को पत्र प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुए विषाद शब्द का ''खिन्नता, उदासी, उत्साहहीनता'' अर्थ है। युद्ध के प्रारम्भ में रणशुर वीर अर्जुन को तथा युद्ध के पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर को इसी तीव्र विषाद ने घेरा था। विषाद के अर्थ से ही हमे समझमे आता है की विषाद उत्पन्न होना यह मानसिक विकास होकर इसका परिणाम शरीर पर होना स्वाभाविक है और यह परिणाम अर्जुन के शरीर पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। स्वामी रंगनाथानन्द जी कहते है की ''वास्तव में अर्जुन के संदर्भ में यह एक स्नायविक विकार था। ''रणभूमि पर युद्ध हेतु सज्ज हुआ शत्रुपक्ष के सैन्य का निरीक्षण करने के लिए दोनों सेनाओं के मध्य स्थित अर्जुन कहता है।

''दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
विपथुश्च शरीरे में रोमहर्षश्च जायते।।
गाण्डीव स्रंसते हस्तात्वक् चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।

अर्थात ''हे कृष्ण यह देखकर कि ये मेरे सम्बन्धीगण युद्ध के प्रयोजन से यही एकत्रित हुए है मेरे हाथ पैर मेरा साथ नही दे रहे मेरा मुँह सुखा जा रहा है मेरे पूरे शरीर में कम्पन हो रहा है मेरे रोम तन्तु खडे हो रहे है। गाण्डीव धनुष हाथ से छूट रहा है और मेरी त्वचा जल रही है। हे केश्व में सीधा खड़ा नही हो सकता। मेरे सिर चकरा रहा है।''

वास्तविक रूप से अर्जुन यह एक अद्धितीय यौद्धा था। युद्ध के प्रारम्भ में हुए शखनाद के उपरान्त अर्जुन जो उत्साह

और स्फूती थी उसकी परिणीती स्वजन दर्शन के पश्चात प्रथम विषाद में तदनन्तर दैन्यभाव में हुई है। अर्जुन कहने लगा ''युद्ध में स्वजन गुरूजन व सुहदजन इनको मारने मे न ही मुझे कुछ भला प्रतीत होता है। न मुझे विजय प्राप्ति की इच्छा है र राज्य की और न ही सुख प्राप्ति की इच्छा हैं। कौरवों को लोभ के कारण कुलक्षय में होने वाले दोष व मित्रदोह का पातक दिखाई नहीं दे रहा है फिर भी इस पाप से हम निवृत हो सकते है। कुलक्षय और कुलधर्म का नाश होने पर कुलस्त्रिाया भ्रष्ट होगी और वर्णसकर होने से जाति धर्म व कुलधर्म नष्ट होगा। हम एक महापाप करने को उघत हो रहे है। जिसमे एक राज्य के सुख भोग के लोभ के कारण हम अपने ही संबन्धियों को मारने को तैयार है। कौरव मेरे द्धारा सामना न करते हुए हाथ में शस्त्र लेकर भी मुझ शस्त्रहीन को मारे तो वह भी मेरे लिये अच्छा है। ऐसा अर्जुन युद्ध के पूर्व कहने लगता है।

इसी प्रकार विषाद युद्धोपरान्त युधिष्ठिर में दिखाई देता है। युधिष्ठिर कहता है भगवान श्रीकृष्ण के बाहुबल को आश्रय लेने से ब्राह्मणों की कृपा होने से तथा भीमसेन और अर्जुन' के बल से इस सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त हुई है। परन्तु मेरे ह्रदय में निरन्तर यह महान दुख बना रहता है कि मैने लोभवंश अपने बन्धु बान्धवों का महान सहार करा डाला। यह विजय भी मुझे पराजय सी जान पड़ती है। यदि हम लोग दृष्टिवशी तथा अन्धकावशी क्षत्रिया की नगरी द्वारका में जाकर भीख माँगते हुऐ अपना जीवन निर्वाह कर लेते तो आज अपने कुटुम्ब का निर्वश करके हम इस दुर्दशा को प्राप्त नहीं होते। आत्मीय दशा को मारकर स्वय ही अपनी हत्या करके हम कौन सा धर्म का फल प्राप्त करेगे? क्षत्रिय के आचार बल पुरूषार्थ और अमथर्को धिक्कार है। जिनके कारण हम ऐसी विपत्तियों में पद गया। हम लोग तो लोभ और मोह के कारण राज्यलाभ के सुख का अनुभव करने की इच्छा से दम्भ और अभिमान का आश्रय लेकर इस दुर्दशाम फस गये है। जब हमने पृथ्वी पर विजय की इच्छा रखने वाले अपने बन्धु बान्धवों को मारा गया देख लिया तब हम इस समय तीनों लोकांका राज्य देकर भी कोई प्रसन्न नहीं कर सकता। मैने ही राज्य के लाभ में आकर पुत्र, पौत्र, भाई, चाचा, ताऊ, गुरू ससुर, मामा, भानजे सुहद, मित्र आदि को वध करके ऐसा पाप कर लिया है जिसका प्रायश्चित से अन्त नही हो सकता अत हमें निस्सदेह नरकमे ही गिरना पड़ेगा। गुरूजनों का सहार करने वाला कुल का नाश करने वाला मेरे समान दुसरा कोई नही होगा। इस प्रकार अत्यन्त शोक करने वाले युधिष्ठिर ने बताया की मैं राज्य का स्वीकार नहीं करूगा और उनमें सन्यासी दृष्ठि धारण कर शरीर का क्षीण करत हुए समय व्यतीत करूगा।

विवेचन

इस प्रकार युद्ध के पूर्व और युद्ध के पश्चात् विषाद उत्पन्न हुआ है। पड़ रिपु ही सामान्यत युद्ध का कारण रहते हुए उसका परिणाम विषाद ही होता है और उस विषाद का मूल कारण स्वजनासक्ती उसी प्रकार पाप विषाद तथा नरकप्राथी अर्थात स्वगती के विषय में चिंता है। वास्तविक रूप से श्रीकृष्ण की साहायता से होने वाला यह धर्म के लिये ''धर्मयुद्ध' है। किन्तु विकारों के अधीन हुए श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन और धर्मराज 'युधिष्ठिर इन दोनों में विषाद उत्पनन हुआ है। स्वजनासक्ती के कारण ''मै अपना ज्ञातीओं का वध करूगा या मैने अपने ज्ञातीओं का वध किया ''लोग क्या कहेंगे? और इस पापाचरण से अधोगति'' इस प्रकार के असंख्या विचारों से कर्म से निवृति की ओर अर्जुन और युधिष्ठिर गये है।

इन दोनों के विचारों में तीन बात प्रमुखता से दिखाई देती है।

1. सर्वप्रथम ''मैं मारने वाला या मरने वाला'' इस भाषा से अर्जुन और युधिष्ठिर का ''आत्मा के विषय में अज्ञान'' दर्शित होता है।
2. अर्जुन का युद्ध से ओर युधिष्ठिर का राज्यधिकार से परावृत होकर धर्म के विरूद्ध आचरण में प्रवृत होना इससे दुसरा स्वजनमात से स्वकर्तयकम को इस प्रकार टालना इसमें ''स्वधर्मनिष्ठा की कमी'' दिखाई देती

है। और

3. अर्जुन तथा युधिष्ठिर यह दोनों सुख के लिये उपभोग के लिय हम राज्य नही चाहिए ऐसा कहते है, इससे ''कर्मयोग के बारे में गलत धारणा'' इन दोनों की भाषा से यक्त हो रही है। क्योंकि कर्मयोग का आचरण कभी भी फल के लिये नही होना चाहिए।

अर्जुन तथा युधिष्ठिर इनके आत्मविषयक अज्ञान का निरसन स्वधर्म का श्रष्ठत्य कर्मयोग का ज्ञान और आत्मकल्याण प्रति उत्पन्न आर्तता इनके लिये श्रीकृष्ण ने अर्जुन का और अर्जुन भीम, नकुल, सहदेव, द्धोपदी मुनि देवस्थान व्यास व श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को उपदेश किया है।

प. सांतवलेकर जी कहते है की ''शिष्य की मनोभूमि अगर योग्य रीति से तैयार नही हुई तो उसके मनन कोई भी उपदेश स्थिर नही हो सकता। जितना विषाद खेद मन में उत्पन्न होगा उतना ही ज्यादा आनन्द उत्साह और आशावाद का उपदेश मन में दृढ होगा। इस प्रकार से विषाद योग का एक विशष महत्त्व भी है। इस दृष्टि से भगवद्गीता में अर्जुन की ओर शान्तिपर्व में युधिष्ठिर की मनोभूमि उपदेश ग्रहण करने के लिये योग रूप में तैयार हो गयी थी।

स्वजनासक्ती यह दोनो के विषाद का मूल होते हुए भी कही पर सूक्ष्म रूप से संजय के वक्तव्य का प्रभाव अर्जुन और युधिष्ठिर के विचारों से भासित होता है। धृतराष्ट्र ने धर्मवचनों का उपयोग करके पाडवों को युद्ध से परावृत्त करने का जो प्रयास किया उसका परिणाम याने अत्यतंहीन ऐसी स्थिति के दोनों प्राप्त हुए है। ''हम अधर्म के मार्ग पर जा रहे है या हम ने अधर्म किया'' यह भावना यु;द्ध के पूर्व अर्जुन में और युद्ध के पश्चात युधिष्ठिर में निर्माण हुई है।

अर्जुन और युधिष्ठिर के विषाद का कारण व स्वरूप समान होने पर भी दोनों के विषाद में अंतर यह है कि युधिष्ठिर का विषाद कर्म के बाद होने से उससे अपराधी भावना, लोकनिंदा का भय तथा प्रायश्चित की भाषा यह तीन बाते प्रमुखता से दिखाई देती है और अर्जुन के विषाद से आगे होने वाले परिणामों का भय और उससे अक्रर्मता स्पष्ट व्यक्त हो रही है।

इस प्रकार अर्जुन तथा युधिष्ठिर के विषाद के समान हर एक मनुष्य को कभी ना कभी विषाद का सामना करना पड़ता है उस समय हम अगर अपने ह्रदय में स्थित अंतर्यामी कृष्ण को शरण जाते है तो निश्चित रूप से वह

''क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वयि उपपद्यते।

क्षुदं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।''

यह कहकर शक्ति प्रदान करेगा और जीवन में योग्य मार्ग दर्शन करेगा।

***सह आचार्य**
व्याकरण विभाग
राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
बौंली (राज.)

संदर्भ

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिंदी कोश, पान, 961
2. स्वामी रंगनाथानन्द, भगवद्गीता का सार्वजनिक संदेश भाग 1, पान 69

3. भगवद्गीता 28.30
4. भगवद्गीता 31.46
5. महाभारत, शान्तिपर्व 1.13.15
6. महाभारत, शान्तिपर्व 7.3.10
7. महाभारत, शान्तिपर्व 33.1.12
8. महाभारत, शान्तिपर्व 9 और 28
9. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, श्रीमद्भगवद्गीता, पुरूषार्थ बोधिनी भाषा टीका, पान 40
10. महाभारत, उद्योगपर्व 20 से 32 संजययान